Kajali Lokgayan ke Vividh Svarupon Ka Adhyayan

"कजली लोकगायन के विविध स्वरूपों का अध्ययन"

Sarita Srivastava,सरिता श्रीवास्तव १[*]

शोध छात्र, नेहरु ग्राम भारती विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र. भारत

सार

*किसी भी आशय या गीत के बोलने की प्रणाली उसे प्रस्तुत करने का तरीका ही शैली कहलाता है। दूसरे शब्दों में अभिव्यक्ति के प्रकार को शैली कहते हैं । अंग्रेजी में शैली के लिए **"Style"** शब्द का प्रयोग किया जाता है। शैली के संबंध में डॉ.निरुपमा शर्मा का कथन "शैली से व्यक्ति या साहित्यकार मूर्त होता है। प्रत्येक साहित्य सृजेता अपनी अलग शैली से जाना-पहचाना जाता है। सृजनकार जिस व्यक्तिक विशिष्टता के साथ सृजन करता है उसका प्रभाव आ ही जाता है। शास्त्रीय विवेचन में शास्त्रचार्यों ने काव्य में बाह्य और आंतरिक भाव पक्ष और कला पक्ष माने तथा उसके विभिन्न तत्वों के परिगणना करते हुए बुद्धि, कल्पना, भाव, शैली आदि नाम गिनाये। वस्तु की अभिव्यक्ति के प्रकार और ढंग को ही 'शैली' कहा गया।*

कजरी, उत्तरप्रदेश के बनारस और मिर्जापुर क्षेत्र में अत्यधिक प्रचलित है। कजरी वर्षा ऋतु का गीत है कजरी की स्वर, ताल, लय अत्यधिक सुंदर एवं आकर्षित करने वाली शैली है। जो सरल, सहज और मधुर बोलचाल के रूप में व्यक्त होती है। प्रस्तुत शोध कार्य में विभिन्न विद्वान, पुस्तक, पुस्तकालय आदि का सर्वे किया गया है| इसमें गायन कजरी के शैलियों के विभिन्न स्वरूपों का वर्णात्मक रूप से वर्णन किया गया है|

मुख्य शब्द:-*कजली,लोकगायन,विविध स्वरूप आदि*

परिचय

भारतीय संस्कृति, सभ्यता को प्रभावी अक्षुण सर्वग्राही बनाने,जन जन के ह्रदय में रचाने बसाने, अंतर्मन की गहराईयों में उतारने में हिंदी लोक संस्कृति के पावस गीतों में प्रभावी स्थान रखने वाली कजली विन्ध्य-काशी अंचल के पारम्परिक प्रभाव क्षेत्र की एक अत्यंत सरस,ह्रदय स्पर्शी,आत्मीयकर्ण

प्रिय विधा है । पतित पावनी माँ गंगा भागीरथी के तटीय क्षेत्रों,जगत जननी माँ विंध्यवासिनी धाम के विन्ध्यपर्वत माला परिधि और तीनों लोकों से न्यारी जगतपिता बाबा विश्वनाथ जी की मोक्ष नगरी काशी के सयुंक्त आध्यात्मिक आभा क्षेत्र को सदियों से कजली की उधगम स्थली माना जाता है । कजली कजरी एक ही है लोक भाषा में इसे उक्त दोनों नामों से पुकारा जाता है। कजली वस्तुतः तड़प वेदना विरह वियोग, प्यार मनुहार का सरस मर्मस्पर्शी गीत है । मूलतः विंध्य काशी क्षेत्र से ही कजली कालान्तर में बहु-बेटियों, गृहस्त महिलाओं, गायिकाओं गायकों द्वारा सम्पूर्ण भारत में फैली और बाद में आकाशवाणी रेडियो दूरदर्शन, टेलीविज़न, प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का आविष्कार होने पर एवं प्रवासी भारतियों द्वारा विदेशों में बसी सनातन धर्मी भारत वंशियों के समुदाय तक फिजी, नेपाल, मारीशस, त्रिनिडाड, गुयाना, जापान, तिब्बत, बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका, इंडोनेशिया, मलेशिया, भूटान, म्यांमार, अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस,कनाडा,रूस,अफगानिस्तान आदि देशों तक विस्तारित हो पाई । विन्ध्यकाशी क्षेत्र के महोबा को भी कजली का प्राचीन उधगम क्षेत्र माना जाता है । महोबा क्षेत्र में भी कजली सदियों पूर्व से गायी जाती है । कजली को लोकगीतों की रानी भी कहा जाता है ।

"कइसे खेलै जइबू सावन में कजरिया,
बदरिया घेरे आई ननदी।"

मिर्ज़ापुर, सोनभद्र, वाराणसी, भदोही, प्रयागराज, कौशाम्बी, जौनपुर, गाज़ीपुर, बलिया, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, झांसी, बुंदेलखंड, गढ़वा (झारखण्ड), भभुआ, सासाराम(बिहार) क्षेत्रों में सदियों से लोक कंठों शुशोभित करने वाली कजली विस्तारित होते होते धीरे-धीरे सम्पूर्ण उत्तर भारत, तदुपरांत पूरे भारत एवं विदेशों में बेस भारतीय समुदाय के उल्लास उमंग प्रसन्नचित्त जीवन चर्चा का लोकप्रिय पावस गीत ऋतू गीत बनी ।

कजली लोकगीत गायन का भौगोलिक परिचय

(अ) कजली की उत्पत्ति एवं उसका अर्थ -

लोक आस्था मान्यता में जगतजननी आदिशक्ति माँ देवी विंध्यवासनी माता को माँ कज्जला देवी का स्वरुप भी माना जाता है । माँ विन्ध्वासिनी धाम मिर्ज़ापुर में है। देवी माँ विंध्याचल मिर्ज़ापुर में ही स्थायी रूप से वास करती हैं मान्यता है कि कजली साक्षात् माँ विंध्यवासनी देवी जी के कंठ से प्रस्फुटित विरह गीत है जो जनमानस विशेषकर देवियों (महिलाओं) के कोकिल कंठों से रच बस गई प्रकृति की मोहकता,मादकता के मध्य माँ कज्जला का विरह सृष्टि के सर्व्वोच्च सत्ता भगवाग शिव के वियोग में है इसमें आध्यत्मिकता की आभा भी है । मिठास,आतुरता वियोग-वेदना प्यार मनुहार भी है । लोक साहित्य लोक मन का प्रतिबिम्ब होता है । यह विद्वता के वजाय विचारों की अनुभूति को व्यक्त करती है । लोक साहित्य लोक जीवन की वैचारिक धारा है । लोक जीवन के समस्त दैनिक कार्यों जैसे-जन्म,मांगलिक कार्य, विवाह, संस्कार, पूजा, आराधना, उत्सव, पर्व, त्यौहार, खेती-किसानी, नौकरी व्यापार आदि समस्त में लोक साहित्य की उपस्थिति अनिवार्य रूप से रहती है । कजली लोक

साहित्य,लोक गीतों की रानी के रूप में प्रतिष्ठित है। कज्जल देवी माँ के प्रतिरूप माँ विन्ध्यवासनो देवी जगत जननी का दर्शन पूजन करने के साथ-साथ उन्हें काजल का टीका लगाने का प्रचलन देवी आराधना के साथ ही प्रारम्भ हुआ था जो आज भी चल रहा है । इस तरह कजली की उत्पत्ति देवी माँ (कज्जला देवी) (जगत जननी माँ विंध्यवासनी देवी) से प्रारम्भ होकर इसका उत्पत्ति स्थल विंध्याचल विन्ध्य क्षेत्र ही है । इस तरह कजली विंध्य पर्वत माला से प्रारम्भ होकर कैमूर सतपुड़ा पर्वत माला अरावती पर्वत माला के क्षेत्रों, तदुपरांत सम्पूर्ण राष्ट्र एवं अंततः सम्पूर्ण विश्व पटल तक पुष्पित पल्लवित हुई । सर्व ग्राह्य होने के कारण कजली की महत्ता निरंतर बढ़ती रही फलतः वह विस्तार पाती रही।

कुछ विचारक कजली की उत्पत्ति महोबा बुंदेलखंड को मानते हैं । महोबा बुंदेलखंड आल्हा उद्दल वीर राजाओं का क्षेत्र रहा है । चुनार (नैनागढ़) विंध्यक्षेत्र की राजकुमारी सोनवां का विवाह युद्ध जीतने के बाद आला उद्दल से हुआ था । सोनवां विंध्य क्षेत्र की बेटी और महोबा बुंदेलखंड की बहु थी । आल्हा के गायन से पूर्व महोबा बुंदेलखंड में कजली की उपस्थिति का कोई प्रमाण नहीं मिलता ऐसा प्रतीत होता है की चुनार (नैनागढ़) की राजकुमारी के साथ ही कजरी महोबा बुंदेलखंड पहुंची और वहाँ सोनवां के सानिध्य में रहने वाली देवियों (महिलाओं) से पूरे महोबा और बुंदेलखंड क्षेत्र में विस्तार पाई । प्राचीन चुनारगढ़ किले में आज भी सोनवां मंडप है । जनश्रुति कि सोनवां से प्रणय की अभिलाषा लिए आल्हा उद्दल चुनारगढ़ (विंध्यक्षेत्र) आए उस समय तेज बरसात से गंगा नदी एवं क्षेत्रीय छोटी नदियों में बाढ़ आई हुई थी। चुनार किला पर्वत गंगा जी से सटा ठीक किनारे पर स्थित है ।

चुनार किला तक जाने का रास्ता गंगा नदी एवं अन्य क्षेत्रीय नदियों के बाढ़ के कारण अवरुद्ध होने से आल्हा उद्दल अपनी सेना सहित चुनार से पक्षिम शक्तिपीठ माँ चंडिका देवी धाम पर कुछ दिन तक रुक कर बाढ़ समाप्त होने की प्रतीक्षा किये थे।और इस बीच गंगा किनारी ही अवस्थित माँ चंडिका देवी की आराधना में अपना समय व्यतीत किये थे । बाद में बाढ़ कम हो जाने पर वे चुनारगढ़ पहुंचकर युद्ध में चुनारगढ़ नरेश को पराजित कर उनकी पुत्री सोनवां से विवाह कर सोनवां के साथ साथ इस विंध्यक्षेत्र की संस्कृति कजली को भी अपने महोबा बुंदेलखंड ले गए थे । यह भी जनश्रुति है कि राजकुमारी सोनवां आल्हा-उद्दल की वीरता सुनकर उन्हें चाहने लगी थी । इसकी जानकारी होने के बाद आल्हा-उद्दल ने सोनवां को प्राप्त करने की योजना बनाकर उसे क्रियान्वित किया था ।

"नगर महोबो ना देखौ, न देखो किरतु आ ताले,
सावन कजरिया ना देखी, न देखी चन्देलन फाग"

(ब) सामजिक परिवेश में कजली की स्थिति:-

ग्रामीण जनमानस में वर्षाऋतू के चारो महीनों में देवियाँ (महिलाएं) एक जगह एकत्रित होकर समूह में हाथ में हाथ मिलाकर एक-दो या उससे अधिक झुंडों में कजली गीत का मधुर गायन करती रहीं हैं । सावन में झूला झुलाते झूलते कोकिल कंठों से कजली गायन कर स्वयं परिवार समूह समाज गांव को आनंदित करती रहीं हैं । सायं घर गृहस्ती के कार्यों से निवृत्त होकर प्रतिदिन एक या दो या अधिक समूहों में इक्कठा

होकर तन्मय भाव से भाव विहवल होकर कजली का गायन करते हुए आनद के साथ समता,एकता,सौहार्द आत्मीयता की जीवन धारा को मजबूत करती रही है । उस समय खरीफ ऋतू में खेतों में धान की रुपायी करते समय उल्लास पूर्वक ललकार कर कजली जाती रहीं हैं । जिसमे खेत की रुपायी कब पूरी हो गयी पता ही नहीं चलता है । थकान सोच में भी नज़दीक नहीं फटकती है और साथ में खेती का कार्य करने वाले पुरुष किनास नारी के कोकिल कंठो से कर्णप्रिय कजली सुनते सुनते मन ही मन मुदित आनंदित होते हुए दुगना तिगुना किनासी कर डालते हैं और उन्हें पता भी नहीं चलता। पुरुष गायक भी टोलियों में कजली गाते हैं कहीं-कहीं देवियों (महिलाओं) पुरुषों की प्रतिस्पर्धात्मक कजली होती है जिसमे विजेता प्रायः देवियों का समूह ही होता है कजली की टेक झूले के पटेंग के साथ साथ पूरी होती है ।

विंध्यक्षेत्र की कजली के क्षेत्र में "हरी" और "ना" का गायन उसे सुर ताल मात्रा से सहज ही जोड़ता है । अखाड़ों की कजली प्रतियोगिताएं प्रायः कजली मेले के उत्सव का रूप लेती रही है। फलतः यह हमारी लोक संस्कृति को भी समृद्ध करती रही है परम्पराओं को अक्षुण करती रही है ।

“पिया मेंहदी लिया दा मोती झील से
जाके साईकिल से ना -
पिया मेंहदी लिया दा
छोटी ननदी से पिसा दा
अपने हाथे लगा दा काटाकील से
जाके साईकिल से ना
"हरी हरी श्याम गए परदेस,
न पठवै पाती रे हरी -
परसों परसों कहिके उहवाँ बरसों बितउलैं रामा
अरे रामा बिरहन रोवत दिन राती -
पठवै पाती रे हरी"

कजली रचयिता कवियों, गायकों, अखाड़ों, सुधी श्रोताओं कजली प्रेमियों, आम जनमानस में कजली को लोक जीवन को हार बना दिया। इसे दैनिक जीवन में इतना रचा बसा दिया कि यह भी जीवन जीने का एक भाग हो गई। जीवन लय के साथ अटूट हो गयी। कजली अखाड़ों की गुरु शिष्य परंपरा ने सदियों तक कजली को पीढ़ी दर पीढ़ी प्रभावी बनाये रखा । क्या महिला क्या पुरुष सभी अपने अपने तरीके से कजली में रमे रहे ।

(स) सांस्कृतिक रूप में कजली की स्थिति:-

सनातनी सन्यासी,ऋषि-महर्षि, संत-महात्मा प्राचीन काल से ही वर्षाऋतु में चातुर्मास करते रहे हैं । अपने भर्मण विहार के दौरान सन्यासी जहाँ वर्षाऋतु प्रारम्भ हो जाता था वहीं चार महीने वर्षाकाल रूक

कर चातुर्मास साधना किया करते थे। संत समाज में यह परंपरा आज भी है । संवत के चार मॉस आषाढ़ सावन,भादों क्वार वर्षा मास के साथ साथ कजली गायन का भी मास रहता है । स्वाभाविक है कि संत समाज के चातुर्मास साधना की आभा अनुभूति प्रभाव प्रेमी परमात्मा की तड़प तड़प विछोह विरह कजली गायन धारा का भी प्राण तत्व है ।

वर्षाऋतु में मेघ के बरसने काले बादलों, भूरे बादलों के उमड़ घुमड़ गरजने बरसने, आकाशीय विधुत के चमकने,तड़पने,प्राणऊर्जा पवन के तेज स्वयं मंद मंद झोकों,प्राकृतिक हरीतिमा, मन के मादकता के मध्य परमात्मा अथवा सुदूर रह रहे नायक नायिका की याद में नगीनों के डसने जैसी वेदना युक्त अनुभूति कराने वाली वियोगी कजली प्रकृति के उन्माद की सरस विरही अभिव्यक्त है। यह दिव्य हरितमा, प्रकृति के चरम आनन्दोसत्व का प्रतीक पावस गीत है प्राण तत्व है ।

सम्प्रति महान चिंतक विद्वान राजनेता,पूर्व केंद्रीय मंत्री पूर्व राज्यपाल पूर्व कश्मीर नरेश डॉ. कर्ण सिंह की प्रेरणा से पूर्व काशी नरेश राज घराने द्वारा राजकुमारी कृष्ण प्रिया जी के नेतृत्व में अस्थापित **"विश्व संस्कृत प्रतिष्ठानम"** द्वारा प्रतिवर्ष आदि शक्ति माँ विंध्यवासनी देवी जी के अवतरण दिवस पर संस्कृत साहित्य में कजली महोत्सव का गौरवपूर्ण आयोजन किया जाता है। जिसमे संस्कृत विद्वानों सभी श्रोताओं, विशिष्ट आयोजकों एवं जनमानस द्वारा ह्रदय स्पर्शी,मर्मस्पर्शी,काव्यधारा का भरपूर आनंद लिया जाता है । यह कजली गीत संस्कृत सहित्य एवं लोक जीवन के सांस्कृतिक स्वरुप तीनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण,आनंद दायक है ।

लोक जीवन स्वयं में सर्वग्राह्य समग्र समाज है तो स्वाभाविक है "लोकगीत, लोकगायन, लोकसंस्कृति, लोकभाषा, लोकपरम्परा, लोकमान्यता, लोकआस्था, लोकविश्वास, लोकसदाचार, लोकमर्यादा, लोकपरोपकार, लोकउदारता,लोकसंस्कार भी समग्र परिपूर्ण होगा ही"।

ऐसी स्थिति में लोकपरम्परा का पावस गीत लोकगीतों की रानी कजली,सांस्कृतिक स्वरुप में कैसी परिपूर्ण नहीं होगी? कजली भी पूर्ण होगी कजली संस्कृति भी पूर्ण होगी। कजली साहित्य भी पूर्ण होगा ।

आधुनिक हिंदी के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी के युग भारतेन्दु युग को कजली का स्वर्ण युग कहा जा सकता है । उस समय कजली का विस्तार भी चर्तुर्दिक खूब हुआ भारतेन्दु जी,पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित अम्बिका दत्त व्यास प्रातः स्मरणीय महामना पूज्य पंडित मदन मोहन मालवीय जी,श्री धर पाठक, चौधरी बद्रीनाथ उपाध्याय 'प्रेमधन' द्विज बलदेव,किशोरीलाल गोस्वामी 'रसिक', श्री मुंशी रामस्वरूप लाल श्रीवास्तव 'मंगल' आदि द्वारा कजली को जन जन का कंठहार बना दिया गया ।

कजली मूलतः स्त्रियों का गीत रहा। कालांतर में इसमें पुरुषों की भी सहभागिता होने लगी जो जोर पकड़ते पकड़ते कजली गायन के दंगलों के रूप में परिवर्तित हो गया । कजली की लोकप्रियता और महत्त्व आप इससे समझ सकते हैं कि कजली सुनने हेतु काशी नरेश जी रामनगर दुर्गकाशी मुर्जापुर जाय करते थे और गायकों-गायिकाओं को पुरस्कार देकर उनका उत्साहवर्धन किया करते थे

"दशमी रामनगर की भारी, कजरी मिर्जापुर सरनाम

रामनगर काशी के राजा ,मिर्जापुर जयराम"

भारतीय संस्कृति में मात्र शक्ति की बहुत महत्ता रही है । महिला और परंपरा,पर्व,प्रकृति सर्वदा एक दूसरे से जुडी रही है । एक दूसरे की पूरक रही है। प्रत्येक धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, अनुष्ठान कार्य समारोह में स्त्री की अनिवार्य सहभागिता भारतीय संस्कृति की मूल प्रकृति रही है। हमारे समाज में पर्वों अनुष्ठानो आयोजनों को मात्र शक्ति स्वयं अथवा पुरुष को भी सम्मिलित कर सामूहिक रूप से सार्वजनिक रूप से मनाती रही है ।सामूहिकता की यही इंद्रधनुषी छटा कजली संस्कृति, साहित्य, गायन, वादन की प्राण तत्व रही है । समूह में कजली गाना उत्साह में आनंद में उल्लास में गाना मंद्र मंद्र गाना झूम झूम के गाना ललकार ललकार के गाना कजली के विविध रूप हैं । कजली ने समाज में विविधता में एकता का लय बाँधा हैं । उदासी को उमंग में उदासीनता को तल्लीनता में परिवर्तित किया गया है ।

"सम्हल के करना जग में कारोबार बलमू,
है इस काया का कारीगर,होशियार बलमू"

भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे प्राचीन, श्रेष्ठ, मर्यादित संस्कृति है। भारतीय संस्कृति सम्बर्धन हेतु ही महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने पूरे अखंड भारत से भिक्षा मांग मांग कर विश्वस्तरीय काशी हिन्दू विश्व विध्यालय की स्थापना बाबा विश्वनाथ जी एवं माँ गंगा की पुरातन नगरी वाराणसी में की उस विशिष्ट 'संस्कृति को भारतीय जन मानस स्वयं' रचाए बसाए हैं । उसी रचने बसने में कजली भी है । ब्रह्मलीन भारतीय ऋषियों मनीषियों लोक जीवन संस्कृति का लक्ष्य आत्मा का कल्याण माना है । भारतीय संस्कृति संस्कार मोक्ष दायी है। यह हमें पूर्वजों से विरासत में मिली है। इसका प्रारम्भ सदा चरण से होता है। संस्कृति में हमारा समाज सामाजिक ताना बाना परंपरा रिती-रिवाज विद्या मंदिर, तीर्थ स्थल,पर्व व्रत यज्ञ अनुष्ठान के साथ साथ पशु-पक्षी-चीटी नदियाँ पर्वत वृक्ष लताएं पौधे सामाजिक विकास सामाजिक व्यवस्था शाशकीय व्यवस्था न्यायालय आदि सभी सम्मिलित है। एक कजरी देखें-

"चन्दा आज गगन में चमको-
रहे अँजुरिया सारी रात
शीतल सुरभित रहे बयरिया
झिलमिल झिलमिल करे तरइया
आज सुहाग की बेला चंदा
हियरा समुझि समुझि हुलसात "
कोई तो सूरज विलमायो
साइत कंत मिलन को आयो
मधुकर चटकन लागीं कलियाँ अंगना उत्सव की बारात ।

मंगल जी के कजली का लालित्य देखें -

"छटा बरखा छाई बा निराली पिया

घेरे घटा काली पिया ना"

"कबौं गिरे जलधार

कबौं माधुरी फुहार

कबौं दागै ला बदरवा दू नाली पिया

घेरे घटा काली पिया ना"

"पेड़ पाती हरिआत-लोनि लता लिपटात

लहरात नदी जात जल उछाली पिया

घेरे घटा काली पिया ना"

"मोरवा पंख फड़लावै

पपीहा पिया पिया गावै

कूक कोयल सुनावै डाली डाली पिया

घेरे घटा काली पिया ना"

"छिड़ल सावनी कै तान

हर खोरी हर मकान

का दलान-का सिवान, कौन खाली पिया

घेरे घटा काली पिया ना"

"ई हौ काम कै घड़ी

ना आराम कै घड़ी

तबै बची "मंगल" मुहवाँ के लाली पिया

घेरे घटा काली पिया ना"

भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी की कजली दृष्टि

"देखा भारत ऊपर कैसे छाई कजरी

मिटि धूर में सफेदी सब लाई कजरी

पूज बेद की रिचन छोड़ि गाई कजरी

नृप गन लाज छोड़ि मुँह लाई कजरी"

कजली की एक और रमणीयता

"रहै देशवा में कोई न अनाथ पिया

धर्म रहे साथ पिया ना"

(द) कजली लोक गीत के विविध रूप -

पावस ऋतू मे लोकमानस के असंख्य लोक कंठों प्रस्फुटित होकर जब कजली विरह वेदना गीत मधुर स्वर में प्रवाहित होती है तो यह अभिव्यक्ति अनुभूति वातावरण में मिट्टी की सोंधी सुगंध प्राकृतिक उन्मुक्तता अनुपमता, मेघवर्ष घने नभ मंडलों और हहराते भूरे बादलों के मध्य विद्युत चमक जैसी नैसर्गिक उपस्थिति को जीवन्त कर देती है। कजली की सुमिरनी धुनदार ढुन्मुनिया चौलर दंगली चौमासा, बारहमासा, झूला कजरी आदि के रूप में कई विधाए हैं ये सभी विधाएँ सर्वदा से लोक कंठो से प्रस्फुटित पुष्पित पल्लवित होते हुए गायन शैली के विविध रंग बिखेरती रही है ।

भारत के विभिन्न अंचलो में कोस कोस कर बदले पानी,चार कोस पर बानी कहावत को चरितार्थ करते हुए लोक भाषा में कजली का स्वरुप और टेक भी क्षेत्रवार बदलता रहा है। इसे बनारसी कजली,मिर्जापुरी कजली, बुंदेली कजली, बघेली कजली,छत्तीसग़ढ कजली, भोजपुरी कजली,कन्नौजी कजली,झूला कजली,राजस्थानी कजली के रूप में सम्बोधित करते हैं।

कजली विरह गीत है,रमणीय गीत है,श्रम गीत है,सामाजिक गीत है,लोक गीत है, ह्रदय गीत है इसमें विविध तरंग है, भाव भंगिमा है, कम्पन है स्पंदन है। उद्द्रम है प्रवाह है,लोक गीत लोक संस्कृति का आधार लोक संस्कृति,भारतीय सनातन संस्कृति का मूल है ।
पंडित बालकृष्ण भट्ट जी रचित कजली का दिग्दर्शन करें ।

" घर में अनाज नाहीं' भूखन को साज नाहीं'
कोऊ सिरताज नाहीं, कपड़ा पुरान,कइसे खेलब कजरी
ब्राम्हण कपूत भइलैं मूढ राजपूत भइले
भूप जमदूत भइले रोवत किसान,कइसे खेलब कजरी"

कजली रस है,कजली मधुरस है, कजली दुख है, सुख है,कजली विरह है,कजली वेदना है,कजली गीत है,कजली संगीत है,कजली आनंद है,कजली परमानन्द है, कजली मनुहार है,कजली श्रृंगार है, कजली अंत है, कजली अनंत है,कजली बसंत है,कजली सगुण है, कजली निर्गुण है,कजली मनमंत्र है,कजली सुमंत है,कजली कृति है, कजली संस्कृति है ।

इस तरह कजली लोकगीतों के विविध रूपों की दीर्घ कालिक,लम्बी श्रृंखला समाज में पीढ़ी दर पीढ़ी जीवन्त रही है जो जीवन का लय सुर ताल गीत, संगीत हास-परिहास,विरह-वेदना,उल्लास-उमंग,आदि सब कुछ बनी प्यार मनुहार तो बनी ही । प्रेमधन जी ने 9 प्रकार की कजलियों का उल्लेख किया है- कजरा, कजरी, उजला, उजली, लगनी ढुनमुनिया, कजला भद्दी,तुकबंदी स्वतंत्र कविता का उल्लेख किया है ।

कजली लोकगीत गायन का ऐतिहासिक परिचय

(अ) कजली लोक गायन का स्वतंत्रता पूर्व इतिहास:-

कजली गायन की परंपरा सदियों प्राचीन है। स्वतंत्रता पूर्व भी कजली अपने विंगहम स्वरुप में प्रतिस्थापित लोकप्रिय रही है । लोग भाषा में कजली पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित रहते हुए स्वाभाविक रूप से भावी पीढ़ियों में स्थानान्तर होती रही है । स्वाधीनता पूर्व से कजली गायन लगभग हर गावों में होता था लोक जीवन में रची बसी, लोक कण्ठ में अन्तः तक धुली कजली का काल खंड सवर्णिम दृष्टिकोण से उन्नीसवीं शताब्दी से सन 1970 के दशक तक था। इस अवधि में कजली की कई विशिष्ट उच्चस्तरीय अखाड़ी गायकी प्रतियोगिताएं मिर्ज़ापुर, अहरौरा, चुनार, सोनभद्र रामनगर, काशी, भदोही, प्रयागराज के साथ बम्बई (महाराष्ट्र), कलकत्ता (पक्षिम बंगाल) बिहार में हुई । सैकड़ों की संख्या में बहुत यशस्वी कजली रचनाकार गायक गायिका और कजली के अखाड़े हुए। कजली गायकी का आयोजन करने वाले भी सरस कजली प्रेमी, संभ्रांत, प्रतिष्ठित नागरिक होते थे। गायिकाओं-गायकों को उपहार,ईनाम दिए जाते थे। जनता कजली की रात रात भर चलने वाली गायन प्रतियोगिताओं का आनंद उठाती थी, उन्हें देखती सुनती उनके संगीत में रहती थी।

कजली की उत्पत्ति भविष्य पुराण लिखे जाने से पूर्व की मानी जाती है। भविष्य पुराण के अनुसार माँ पार्वती देवी ने भगवान शिव जी को प्राप्त करने के लिए 108 वर्षों तक कठिन तप किया था। शिव पार्वती विवाह के उपलक्ष्य में ही कजली पर्व (हर तालिका) मनाया जाता है । कजली का उत्पत्ति स्थल विन्ध्य क्षेत्र के मिर्जापुर जिले का चुनार क्षेत्र माना जाता है ।

"दशमी रामनगर की भारी, कजरी मिर्जापुर सरनाम"

रामनगर काशी की रामलीला का प्रारम्भ सन 1818 से है कजली उस समय भी गयी जाती थी। इससे सिद्ध होता है कि कजली सन 1818 से पहले से ही है। कजली गीतकार विद्वान गण, बाबू भारतेन्दु हरिश्चंद जी, पंडित बाल कृष्ण भट्ट जी, महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी,पंडित अम्बिका दत्त व्यास जी, बद्रीनाथ उपाध्याय 'प्रेमधन' जी द्विज बलदेव, किशोरी लाल गोस्वामी रसिका का कानखंड स्वतंत्रता से पूर्व का ही है ।

ब्रिटिश काल में कजली खूब फली-फूली सन 1850 से लेकर सन 1970 तक कजली की लोकप्रियता सर्वाधिक थी इसी दौरान कजली के कई अखाड़े स्थापित विकसित हुए जिनमें आठ अखाड़े मुख्यतः है। पं• शिवदास मालवीय अखाड़ा, बैरागी अखाड़ी, जहाँगीर अखाड़ा, नजफशाह अखाड़ा, अक्खड़ अखाड़ा आदि ।

प्रत्येक अखाड़ों में सैकड़ों कजरियाँ लिखी और गाई गई। आज भी श्रवण मास में ग्रामीण जनमानस की मिट्टी कजरी की स्वाभाविक सोंधी सुगंध से आप्लावित हो उठती है। कजरी गीतों, कजरी खेलों,कजरी उत्सवों,कजली पर्वो के रूप में स्वतंत्रता से पूर्व की रचित कजली देखें --

"घर में अनाज नाहीं, भूखन को साज नाहीं
कोऊ सिरताज नाहीं,कपड़ा पुरान,कइसे खेलब कजरी"

स्वतंत्रता से पूर्व भी कजली की मौजूदगी यत्र तत्र थी। जब देश में युद्ध छिड़ा हुआ था। नारियाँ मस्तक पर तिलक लगाकर पति का पग चूमकर कजली के माध्यम से ही रणभूमि में जाने को प्रेरित

करते हुए कहती हैं कि नाथ! आप समरभूमि में अवश्य जाएँ बैरियों को परास्त कर के मानों निशां मिटाकर लौट आएं । जिससे सुहाग की लाली और चमक उठे । यदि आप देश की सुरक्षा में तन मन धन लगा देंगे तो निश्चय ही यह बहुत ही शौर्यमयी बात होगी ।

कजली

"जा जा बीच समर जा तूँ अब जवनवां ना
लौटे अइबा पास मार दुश्मनवा ना --
जाके राखा देश शान,पिया कहना के मान
गाई तोहरा बखान ई जवनवां ना --
लौटे अइबा पास मार दुश्मनवा ना---
लौटे घरे जो तूँ अइबा
कजरी गवतै हम के पइबा
गइबा कजरी तूँ साथ में जवनवाँ ना ----
वान माना सरकार
जा तू रण के मंझार
गाई सबही तोहार गुणगनवा ना"

(नारियों की कजरी में कुछ बात और देखें)-

"जा जा तूँ समरे सइयां
लागीं हम तोहरे पइयां
राखा ए देशवा के मान जी
भगिहें तोहंसे उन्मादी
बच जाई बरबादी
हौथे ले गोली गोला तान जी
कर्जा चुकावा जाके
दर्शन तूँ दीहा आके
माना तूँ इ है कहना-- बाटा तूँ हमरा गहना
राखा तूँ मोरा अरमान जी"

स्वतंत्रता से पूर्व भी कजली भरपूर मौजूद थी। नारियाँ अपने वीरपति को सफर में जाने के लिए उत्साहित करती थीं कि ऐ प्रियतम तुम रण के मैदान में जाओ। माँ की करुणा वेदना सुनकर उस धरती माँ की पीड़ा हरो। सकुशल वापस आओ । हो सकता है जब आप विजय श्री पाकर घर आएंगे तो मैं तुम्हारे जीत की खुशी में कजली गीत ही मिल जाऊँ । मेरे सुहाग की लाली प्रशंसा भूरिर सारी दुनिया करेगी । अत्याचार मिट जाएगा उन्मादी भाग जाएंगे इससे प्रतीत होता है कि कजली ब्रिटिश काल के समय भी

थी। नर नारी कजली से स्वतः बहुत प्रभावी थे। बे खौफ पत्नी पति को समरोहण में जाने हेतु प्रेरित करती थी । पति पत्नी की बात सुनकर समरोहण में जाकर विजय को हासिल कर के घर लौटें कर आता तो पत्नी बहुदीप जलाकर अपने प्रकाश की आरती उतारकर मंगल गीत गाकर अपने को धन्य समझती ।

"ब्राह्मण कपूत भइले,मूढ राजपूत भइले
भूप जमदूत भइले,रोवत किसान,कइसे खेलब कजरी"

तत्कालीन काल खण्ड की एक और कजरी ---

"मँहगी गज़ब जोर की घहरे,केहि विधि बचि है पापी प्रान
के ही विधि दी हैं मालगुजारी,रोइहें छाती फाड़ किसान"
"घर दुआर कइसे क रहिहें,चिन्ता चिता लगान
इच्छा काल रोइ रही परजा,सुनि दुख द्रवत पखान"

(ब) कजली लोकगीत गायन का स्वातंत्रोत्तर स्थिति

स्वतंत्रता प्राप्ति १५ अगस्त सन् १९४७ के बाद ६० एवं सन् 70 के दशक तक कजली का गौरव पूर्ववत यथावत् था । अतीत बहुत अच्छा था । कालान्तर में आधुनिकता के चकाचौंध में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हुए मूल्यों के क्षरण सदृश कजली का भी क्षरण हुआ। सन् १८८० दशक एवं उसके बाद के पीढ़ी में कजली के प्रति वह लगाव उत्साह जुड़ाव नहीं रहा जो उनके पूर्ववर्ती पूर्वजों में था इस दौरान सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक राजनैतिक, प्रशासनिक स्वरूप भी बहुत बदला। यद्यपि इस कालखंड में विंध्य अंचल में स्व0 मुंशी श्री रामस्वरूप लाल श्रीवास्तव 'मंगल', ओम प्रकाश लाल प्रकाश मिर्जापुरी जैसे यशस्वी कजली कवि रचयिता एवं पदमश्री श्रीमती अजीता श्रीवास्तव, श्रीमती उर्मिला श्रीवास्तव जैसी ख्यातिलब्ध कजली गायिका भी हुईं जिन्होंने इस ज्योति को जलाए रखा ।

श्री हीरालाल मिश्र मधुकर, श्रीमती शारदा सिन्हा, श्री मेवा लाल वर्मा, इन्दरीश किशोरी आदि कजरी प्रेमियों का योगदान भी उल्लेखनीय है ।

अब कजरी के ह्रास का एक कारण नयी पीढ़ी की कजरी एवं अपने पारम्परिक लोक कलाओं के प्रति अनास्था,उससे दूरी भी है ।

कजली के दिन जौ की जरई बाँधने की प्रथा बच्चियों में आज भी है जो गाँव गाँव में होती है । भादो मास में बड़ो के कान पर जरई रखकर बच्चियां बड़ों, श्रेष्ठों का आशीर्वाद लेती हैं । यह परंपरा बहुत प्राचीन है । सावन में कजली गाते हुए झूला झूलना और झूले को पटेंग लगाकर तेजी से चलाना कजली क्रीड़ा का रूप ले लेता है। इसे महिलाएं मुख्यतः करती हैं । आहलाद हेतु पुरुष भी झूला झूलते हैं। विशेषकर किशोर और नवयुवक, बच्चे। कजरी, बदरी, मेघ, झूला, जरई, सावन, पपीहे की पीउ-पीउ कोयल की कूँक,कजली का झुण्ड में गायन, बरसात, प्राकृतिक हरीतिमा,प्रकृति का उल्लास सभी एक दूसरे के पूरक है । रईसों, गृहस्तों,सुधि श्रोताओं,विद्वानों गायकों प्रेमियों के तो कजली के अखाड़े होते ही थे,कुछ संतों के भी कजली

के अखाड़े थे जो भजन के साथ साथ प्रभु के प्रेम में कजरी गाकर भी परमात्मा की भक्ति करते थे, इसमें मुख्यतः जूनागढ़ अखाड़ा, निर्मोही अखाड़े के संत थे।

गृहस्थों के कजली अखाड़े में शिवदास मालवीय का अखाड़ा, नजफशाह का अखाड़ा, वफ्फत का अखाड़ा, भैरो का अखाड़ा,चौधरी महराज का अखाड़ा, जहाँगीर का अखाड़ा,मार्कण्डेय महराज का अखाड़ा, वैरागी का अखाड़ा, रामसूरत का अखाड़ा,छवि राम का अखाड़ा आदि कजली लोकगीत के सुप्रसिद्ध अखाड़े थे । जिसमे कजलियां रची भी जाती थी और गाई भी जाती थीं। दूसरे अखाड़ों से प्रतियोगिता भी होती थी। वर्तमान में कजली के लेखक स्वतंत्र रूप से ओम प्रकाश श्रीवास्तव प्रकाश मिर्जापुरी का नाम आता है ।

वर्तमान के प्रसिद्ध कजली गायक गायिकाओं में पदमश्री श्रीमती अजीता श्रीवास्तव, श्रीमती उर्मिला श्रीवास्तव, पदमश्री श्रीमती मालिनी अवस्थी, श्रीमती शारदा सिन्हा, उदयचन्द परदेशी, रागिनी चन्द्रा, सुरेश शुभ्ल , सरोज वर्मा, भरत शर्मा, मनीषा श्रीवास्तव, राम जनम भारती, सुचरिता गुप्ता, मुहांवा बनर्जी, अवधेश सिंह, शैल बाल सरकार, मैथिलि ठाकुर आदि का नाम योगदान उल्लेखनीय है ।

इन प्रमुख गायक गायिकाओं के अलावा कजली के गायक श्री लाल बिहारी मिश्र, हरिवंश सिंह चौहान, बद्री सिंह यह सब जनपद ही नही प्रदेश देश में अखाड़ों से कजली गाकर ख्याति अर्जित करने वाले गायकों में रहे। आज भी मिर्ज़ापुर, सोनभद्र, वाराणसी, जौनपुर में बहुत स्थानों पर कजली की प्रतियोगिता,कजली महोत्सव हर वर्ष धूम धाम से किया जाता है ।

(स) कजली पर्व और उसका महत्त्व प्रभाव:-

लोक जीवन, लोक भाषा, लोक संस्कृति, लोक संस्कार, लोक परम्पराएं, लोक विधाएं, मानव समाज की मूल है। जीवन में कजली का बहुत महत्त्व है । कजली आत्मीय है ह्रदय ग्राही है, कर्णप्रिय है । कजरी आत्मीय शान्ति देने वाली लोकगीत की प्रभावी ; सरस सरल मधुर कोकिल यशस्वी विद्या है । वर्षा ऋतू का आगमन मानव मन में उमंग तरंग रंग मादकता बढ़ाने वाला होता है । फलतः पावस ऋतू की लोकगीत कजरी स्वतः मानव कण्ठ पर प्रस्फुटित हो आहलादित कर देती है । ताज़गी का नवीनता का, परिवर्तन का एहसास कराती है ।

"मिर्जापुर कइला गुलजार कचौड़ी गली सून कइला बलमू" में विरही नायिका पावस ऋतू में नायक के मिर्ज़ापुर रह जाने और अपने घर कचौड़ी गली बनारस में न आने पर अपने वियोग की विरही अभिव्यक्ति करती है । नायिका अपनी लगाव,तड़प वेदना रोक नही पाती । अंततः कलेजे से उलाहना देती है ।

उत्तरभारत के ग्रामीणांचलों में कजली-सावन का इतना ज़्यादा महत्त्व रहा है कि बिटिया के ससुराल जाकर पितामह प्रार्थना करता है कि सावन और कजरी सन्निकट है । कृपया बिटिया की विदाई कर दीजिये ताकि वह मायके में उन्मुक्त भाव से अच्छी तरह कजली और सावन का आनंद ले सके । पिता के इस अनुरोध पर बेटियों के ससुराल से नैहर जाकर सावन में कजली खेलने जीने हेतु स्थापित सामाजिक परंपरा रही है| वस्तुतः कजली और सावन, जीवन लय से परंपरागत रूप से जुड़ा रहा है ।

परदेश रह रहे नायक की सावन में घर आने की प्रतिक्षा नायिका करती ही है

"अरी ए मेरी बहना, सूना ए जाए सवना
सजना न आए लौट आँगन ।।
पपीहा पिउ पिउ रट मारे,
ताना करेजवा फारे
सावन में संग में रहना, सुख सरगे का अपना
सजना न आए लौट आँगन ।।

उपसंहार:-

उपर्युक्त शोध में कजली के विभिन्न विधाओं के ऊपर प्रकाश डाला गया है | हिंदी लोकगीतों में गायन शैलियों का अपना विशेष महत्त्व है, क्योंकि इनमें गीत के विभिन्न रूप पाये जाते हैं और यह गीत शैली इतनी प्रभावी और शास्त्रीय गीत के इतने नज़दीक है कि गायक अपने अनुभवों, परिश्रम और रियाज़ के बाद प्रस्तुत कर सकता है। यह लोकगीत शैली आज भी है लेकिन बदलते परिवेश, परिस्थितियों के साथ-साथ इनके क्षेत्र और स्वरूप में उनके परिवर्तन आते रहे हैं। इन लोकगायन शैलियों की प्रमुख विशेषता तथा अपनी विशिष्टताओं के साथ ख़ूबियों को प्रकट कर रहा है जो इस प्रकार से हैं: कजरी, लांगुरिया, रसिया, बारहमासी, लावनी, लोरी, होरी, नृत्यगीत, लोकभजन आदि।

सन्दर्भ सूचि-:

1. उपाध्याय राजीव(२०१५) भोजपुरी साहित्य क उड़ान|
2. डॉ. निरुपमा शर्मा—गीतों की विविध शैलियाँ, पृ. 10
3. मंगल मुंशी आशुकवि-गीतों की विविध शैलियाँ
4. डॉ राजकुमारी शर्मा शोध निबंध,लोकगीतों में व्यक्त विभन्न शैलियाँ अंक: 196, प्रथम, 2022 में प्रकाशित
5. पदम श्री अजित श्रीवास्तव कजरी लोकगीत शैलियों का गायन https://www.maina.co.in/p/blog-page_28.html